ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3592674

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

व्यवसायिकता की ओर उन्मुख छत्तीसगढ़ की आदिवासी एवं लोक कला संस्कृति

डॉ. नीलिमा गुप्ता [1]
[1] एसोसिएट प्रोफेसर व् विभागाध्यक्ष चित्रकला विभाग, महात्मा गाँधी विद्यालय (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद

शोध-सारांश
सृष्टि के प्रारम्भ से सभ्यता के विभिन्न सोपानों से गुजरती हुई कला वर्तमान तक निरन्तर आगे बढ़ती जा रही है। छत्तीसगढ़ एक आदिवासी बहुल राज्य है। आदिवासी जीवन अर्थात ऐसा रस जो ऊपर से निर्विकार किन्तु भीतर से संवेदी, उतावली, निर्झर के समान छलछलाता, उज्जवल एवं निष्पाप। यहाँ के निवासी आदिकाल से ही संघर्षमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस क्षेत्र में अनेक संस्कृतियाँ जन्मीं, पुष्पित-पल्लवित हुयीं। यहाँ के पुरातात्विक स्थलों में इस क्षेत्र की कला एवं संस्कृति की धरोहर सुरक्षित हैं। रामायण में यहाँ के लिये 'महारण्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। सिंघनपुर, कबरा, बानी, बसनाझर, ओगना, कर्मागढ़, बेनीपाट तथा नवागढ़ पहाड़ी से प्राप्त 'आदिम कला' के अवशेष छत्तीसगढ़ के मानव का कला प्रेम स्थापित करते हैं।

मुख्य शब्द – व्यवसायिकता, आदिवासी, कला संस्कृति

Cite This Article: डॉ. नीलिमा गुप्ता. (2019). "व्यवसायिकता की ओर उन्मुख छत्तीसगढ़ की आदिवासी एवं लोक कला संस्कृति." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 7(11SE), 291-296. https://doi.org/10.5281/zenodo.3592674.

संस्कृति एक विकास है, जिसका स्वरूप प्रकृति के समान विकसित होता है। ''वस्तुतः हम श्रेष्ठ विचारों और कर्मों को लोक की भूमि पर बोकर नयी पीढ़ी के लिये उन्नत जीवन मूल्यों की फसल तैयार करते हैं, संस्कृति के रूप में।''[1] संस्कृति परिवर्तन एवं विकास के मार्ग से गुजरने वाला एक ऐसा विश्वास है, जो हमें हमारी आस्थाओं से मिला है। यही कारण है कि संस्कृति के वितान की छाया में विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक बिखरा हुआ संपूर्ण लोक जीवन ब्राह्य वैविध्य और बहु रूपता से आच्छादित होते हुये भी, आन्तरिक एक्य और अनन्यता के आलोक से आलोकित है।

छत्तीसगढ़ की लोक जीवन संस्कृति हमें प्रकृति प्रेम, कठोर श्रम एवं सरल स्वभाव से ओतप्रोत दिखायी देती है। जन-जीवन से जुड़ी यहाँ की लोककलायें व्रत, त्यौहारों, धार्मिक अनुष्ठानों तथा संस्कारों के रूप में मुखर हो उठती हैं। सौन्दर्य के स्वाभाविक आकर्षक से बंधा यहाँ का लोक मानव अपने से जुड़ी प्रत्येक वस्तु में अलंकरण एवं सौन्दर्यभावना को रोपता रहा। परम्परा, मिथक और स्मृति के सामंजस्य से उसने रंग एवं रेखाओं को अनोखा विस्तार दिया। अपने मन-मस्तिष्क में संजोये जन्म-जन्मान्तरों के संचित अनुभवों से उसकी जातीय कलाओं ने समृद्धि प्राप्त की। फलस्वरूप उसके चित्र अद्भुत रंगों के फैलाव, रेखाओं के

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3592674

ताने-बाने, बिन्दुओं के विस्तार, अभिप्रायों की विलक्षणता एवं अनघड़ आकारों में निर्मित होने के पश्चात भी आकर्षण की अनोखी क्षमता रखते हैं। "पशु-पक्षियों की आकृतियाँ उनकी स्मृति के आधार पर आकार लेती हैं। यथार्थ से सर्वथा उलट रंग और रेखाओं का प्रयोग आदिवासी चित्रों में कोई आश्चर्य की बात नहीं है।"[2] लोक कलाओं के प्रायः तीन रूप दृष्टिगोचर होते हैं-जीवनोपयोगी, प्रदर्शनोपयोगी तथा मनोरंजन प्रधान। इन तीनों ही रूपों से अनेकानेक लोक कलाकार व्यवसायी के रूप में जुड़ उन्हें अपना जीविकोपार्जन का माध्यम बनाये हुये हैं। छत्तीसगढ़ के अधिकांश हस्तशिल्पी अब विभिन्न उद्योगों से जुड़ कर न सिर्फ अपने परिवार का भरण-पोषण ही कर रहे हैं वरन् सामाजिक दृष्टि से भी सम्मान पा रहे हैं। छत्तीसगढ़ एक आदिवासी बाहुल्य प्रधान क्षेत्र है। जिसमें खनिज सम्पदा से सम्पन्न पहाड़ियाँ तथा विशाल दण्डकारण्यक क्षेत्र दूर-दूर तक फैला हुआ है। अतः इन्हें अपनी लोक कलाओं में प्रयुक्त सामग्री सहज-सुलभ प्राप्त है। जिनका प्रयोग ये उपकरण बनाने के लिये करते हैं तथा पत्थर, मिट्टी, काष्ठ, बाँस, धातु आदि। वृक्षों के पत्तों, छाल, घास, लौकी का सूखा फल (तूंबा), कौड़ियाँ एक ओर इनकी संस्कृति का अभिन्न भाग है, वहीं आजीविका का साधन भी हैं। जिनके प्रयोग व अपनी मौलिक सूझ-बूझ से कलात्मक अभिप्रायों में नवीनता का समावेश कर खरीदार को लुभाते भी हैं। लोक चित्रों के दो आन्तरिक भेद हैं-

1) ठेठ पारम्परिक चित्रों का निर्माण अर्थात महिलाओं द्वारा घर की भित्तियों को अलंकृत करना।
2) पारम्परिकता का निर्वाह करते हुये व्यवसायिक दृष्टि से सृजन करना। ऐसे चित्र चितेरे या पेशेवर कलाकारों द्वारा मूल्य प्राप्त कर निर्मित किये जाते हैं। जो एक निश्चित शैली में सृजित किये जाते हैं।
3) बिलासपुर जिले के अन्तिम गाँव बालपुर में "गाँव भटली से लोक चित्रकार आते हैं और दीवारों पर चित्रांकन करते हुये निकल जाते हैं-वापस उड़ीसा की तरफ।"[3] ये भाट चित्रकार प्रायः प्रत्येक कच्चे घर की भित्तियों पर एक विशिष्ट शैली के लोक चित्रांकन करते हैं और बदले में अपने यजमान से प्राप्त राशि सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं।

छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ अधिकतर सूती वस्त्र पहनती हैं, जो यहीं के स्थानीय हैण्डलूम इकाईयों में बुनकरों द्वारा निर्मित किया जाता है, ये अपने इस पैतृक व्यवसाय के दक्ष कलाकार हैं। इनके द्वारा मुख्यतः चादर, धोती, कम्बल व साड़ी बनायी जाती हैं। साड़ी की किनारी पर अधिकांशतः त्रिकोणात्मक या वृत्त आकार बनाये जाते हैं। जिन्हें पहले प्रायः दो पक्के व चटक वानस्पतिक रंगों काला व गेरूआ से ही रंगा जाता था। आधुनिक समय में वनस्पतियों से निर्मित नीला, जामनी तथा पीला रंग भी समाविष्ट कर लिया गया है।

बैंगा जाति द्वारा मोटे सूत से निर्मित वस्त्रों को पनिका जाति के लोग बुनते हैं। जिनपर कलात्मक बेल-बूटों वाली कढ़ाई की जाती है। विशेष अवसर के लिये बनाये जाने वाली 'मूंगा धोती' पर लाल तथा कहीं-कहीं सफेद धागों से कलात्मक कारीगरी की जाती है। दोनों ओर छोर वाली 'बगर धोती', कलात्मक बेलबूटों वाली जगदरिया धोती भी अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। छत्तीसगढ़ का प्रसिद्ध कोसा महिलाओं के कठिन परिश्रम का प्रतिफल है। सर्वप्रथम उल्टे मटके पर चिकनाई लगाकर सिल्क धागे का प्रारम्भिक रूप प्राप्त किया जाता है। तत्पश्चात चरखे पर चलाया जाता है। करघे व नक्शे का उपयोग कर इनमें सुन्दर आलेखनों को बुना जाता है। आकर्षक किनारी एवं पल्लू वाली ये साड़ियाँ सौन्दर्य के साथ-साथ एक संस्कृति को भी प्रदर्शित करती हैं। छत्तीसगढ़ में लाल, पीले व हरे रंग का पोलका भी चाव से पहना जाता है। वस्त्र सज्जा की दृष्टि से कौड़ियों का प्रयोग श्रृंगार एवं तन्त्र-मन्त्र दोनों उद्देश्यों की पूर्ति करता है। देवी पूजा के लिये धारण किये जाने वाले आकर्षक लहंगे व चोलियाँ कौड़ियों से सजाये जाते हैं। जिन्हें विक्रय हेतु स्थानीय हाट में उपलब्ध कराया जाता है। चादरों पर साधारणतः आड़ी या खड़ी रेखा व चारखाने ही बनाये जाते हैं।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3592674

वस्त्रों पर छपाई करने वाले छीपा कारीगरों की स्वाभाविक कला दृष्टि के कारण यह कला प्रकृति से अभी भी पहले की तरह ही जुड़ी हुयी है। इसमें निर्मित जनजातीय प्रतीक प्रत्येक वस्त्र के अनुरूप भिन्न-भिन्न बनाया जाता है। आज भी छींपा कला पाश्चात्य प्रभाव से अछूती लोक की स्वाभाविक कला-दृष्टि से सराबोर लोक आकर्षण से सम्पन्न है। आभूषण जहाँ लोक संस्कृति का दर्पण हैं, वहीं लोक मानव की स्वयं के श्रृंगार की स्वाभाविक प्रवृत्ति को भी तृप्त करते हैं। महिलाओं का आभूषणों के प्रति आकर्षण उसके स्वभाव एवं सौभाग्य दोनों से जुड़ा है। आभूषणों की ललक जहाँ नारी की कोमल भावनाओं से संबंधित है, वहीं संस्कृति से भी प्रभावित होती हे। छत्तीसगढ़ में आभूषण बनाने का कार्य सुनार, घसिया, अवधिया, कसेर तथा बस्तर के घड़िया जाति के लोगों द्वारा किया जाता है। घसिया जाति द्वारा कांस्य तथा कसकुट से मोमक्षय विधि में ढाल कर आभूषण निर्मित किये जाते हैं। जनजातियों की संस्कृति एवं परिवेश के अनुसार आभूषणों के रूपाकारों में भी भिन्नता दिखायी देती है। यही नहीं आभूषणों की बनावट, आकृति तथा धातु भी भिन्न-भिन्न जाति, समूह, कबीले तथा क्षेत्र का ज्ञान कराती है। भिन्न-भिन्न जातियों के आभूषण निश्चित आकार-प्रकार या धातु के होते हैं। बोडो जनजाति में वस्त्र कम एवं गहने अधिक पहने जाते हैं। छत्तीसगढ़ की महिलायें कमर में पहनी जाने वाली विशिष्ट करधनी से पहचानी जाती हैं। सालोमन द्वीप की महिलायें अपनी नासिका के बीच के भाग को छिदवाकर कुछ बड़े आकार का गहना पहनती हैं। यहाँ के आभूषणों पर भिन्न-भिन्न अभिप्राय युक्त फूल-पत्ती, नाग-सर्प युग्म, बिच्छू, मीन, तितली आदि गढ़े जाते हैं।

बाल व्यवस्थित रखने के उद्देश्य से चाँदी, सोने व नकली धातु के क्लिप अनेक सुन्दर आलेखनों से युक्त बनाये जाते हैं। जिन्हें फूल-पत्ती, बेल-बूटों, मछली, तितली, चिड़िया आदि के सुन्दर अभिप्रायों से युक्त रंग-बिरंगी मीनाकारी कर बनाया जाता है। घुंघरूओं के समावेश से अतिरिक्त सौन्दर्य की सृष्टि की जाती है। मुरिया युवतियाँ काष्ठ निर्मित कल्पनाशील, कलात्मक कारीगरी व नक्काशी वाली हेयर पिनों का प्रयोग करती हैं। जिनपर सज्जा की दृष्टि से आड़ी, खड़ी, तिरछी, कर्वस तथा त्रिकोणात्मक ज्यामितीय आकृतियाँ उकेरी जाती हैं। कुछ पिनों पर सुन्दर मानवाकृतियाँ तथा पशु-पक्षियों की आकृतियाँ भी बनायी जाती हैं। भिन्न-भिन्न जनजातियों में शरीर पर धारण किये जाने वाले आभूषणों में भी भिन्नता दिखायी देती है। अतः यहाँ के सुनार, घसिया, अवधिया तथा घड़वा जाति के लोगों द्वारा उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप आभूषण गढ़े जाते हैं। यहाँ प्रचलित मुख्य आभूषण सिक्का या रूपया माला, सूता, हँसुली, चापसरी, चाप-ठाटी, बाह्टया, नागमोरी, बाँहा चेघा, बाजूबन्द, कड़े, चूड़ियाँ, कंगन, पटे, कावली, कड़लू ककना-ककनी, पौंचियाँ, हरैय्या, कंदोरा, पयँडी, तोड़रो, कोलड़ा, झांझरी, चूड़ा, तोड़ा, लच्छा, चम्पक, पाजेब, चुटकी, चुटके तथा बिछिया आदि।

गोदना एक ऐसी प्रणाली है जिसका सीधा संबंध लोक संस्कृति से जुड़ता है। ''शरीर के विभिन्न अंगों को चित्रित करने के मूल में अलंकरण की भावना है। यही भावना शरीर पर गोदनाकृति की प्रथा को जन्म देती हैं।''4 भारत के संपूर्ण आदिवासी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में गोदना शारीरिक अलंकरण के रूप में लोकप्रिय है। ''गोदना गोदने की परम्परा इसी अलंकरण की इच्छा का प्रतिफलन है। दरअसल एक रासायनिक तत्व की उपस्थिति में त्वचा को रंजित करना ही गुदना गोदना है।''[5] अधिकांश गुदना चिह्न उन्हीं वस्तुओं चिह्न उन्हीं वस्तुओं को रूपायित करते हैं, जिनका जीवन में बहुत महत्व होता है।[6] गोदने व्यवस्थित रूप से कलात्मक अभिव्यक्ति के प्राचीनतम् स्वरूपों का अंकन हैं। जिनकी सदीर्घ एवं निरन्तर अविछिन्न परम्परा चली आ रही है। गुदना प्रथा के साथ जुड़े हुये अंधविश्वास, लोक विश्वास, पौराणिक आखयान एवं सामाजिक मान्यताओं के फलस्वरूप आदिम समाजों में यह प्रथा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती चली आ रही है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में गोदने का कार्य 'ओम्मा', देवार, बदनिन, ओझिन, बटना, मूँगनी स्त्रियों द्वारा किया जाता है, जिन्हें 'गुदनारी' कहते हैं। पारम्परिक रूपों से पारंगत ये स्त्रियाँ यंत्र द्वारा भरावदार आकृतियों से माँडने जैसा प्रभाव उत्पन्न करती हैं। आजकल हाट-बाजारों तथा मेलों-पर्वों पर मशीन से गोदना गुदवाने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3592674

जिसका मुख्य कारण यही है कि कष्ट कम होने के साथ-साथ समय भी कम लगता है। साथ ही गुदने अधिक साफ-सुधरे, सुन्दर भी लगते हैं। ग्रामीण अँचल में अभी भी गोदना गुदवानी की प्रथा पूर्णतः समाप्त नहीं हुयी है। अतः आज भी गुदनारियों को समाज में सम्मान, नेग स्वरूप अनाज, वस्त्र, मुर्गे व पैसा दिया जाता है। अपने कार्य में दक्ष इन गुदनारियों को भिन्न-भिन्न जातियों के गुदनों की भी पूर्ण जानकारी होती है।

कुछ गुदने लगभग सभी जातियों में गुदवाये जाते हैं। जैसे धार्मिक आस्था परक गुदनों में रामदेव के पद चिह्न, मन्दिर, सूर्य, स्वास्तिक, हनुमान, रामकृष्ण, ऊँ, सूर्य, चन्द्र, गदा तथा पशु-पक्षी सूचक गाय, बन्दर, ऊँट, घोड़ा, मयूर, बिच्छू, सर्प, मीन, सिंह। प्राकृतिक वस्तुओं में कृषि उपलब्धियों की कीर्ति स्वरूप केले का पौधा, सुपारी ताड़का, आम का वृक्ष तथा विभिन्न प्रकार की बेलें व फूल आदि। जल, अन्न तथा पारिवारिक मूल्यों से संबंधित अभिप्राय आभूषण, कुंआ, बावड़ी, तीर-तरकस, कुंडी, घड़ा, गड़ली, जलपात्र, नेज (रस्सी), राम का रथ, कोदो व अन्न के दानें, सीता की रसोई, राम का मुकुट, पीयर बाट, ऊँदा माता की सोंक आदि गुदने विभिन्न जनजातियों तथा ग्रामीण अंचलों में ललक के साथ गुदवाये जाते हैं। वनवासी कुटुम्ब अब भी अपनी इस लोक परम्परा से जुड़े हैं। मान्यता है कि आर्थिक दृष्टि से विपन्न बांदा गुदनारों द्वारा अपने जीविनयापन हेतु गुदने गोदे जाते हैं।

यहाँ की सदियों पुरानी हस्तशिल्प परम्परा में दक्ष ये कलाकार अपनी पैतृक तकनीक को अपनाते हुये सुन्दर रंग योजनाओं, बनावट, कारीगरी और कलात्मकता के साथ सृजन में व्यस्त हैं, जो देखने वाले को आश्चर्यचकित कर देती है। कुछ हस्तशिल्पों में महिलायें तथा कुछ में पुरूष अधिक निपुण होते हैं। छत्तीसगढ़ के मुखय हस्तशिल्प मिट्टी, काष्ठ, धातु की मूर्तियाँ व मुखौटे, बाँस के उपकरण तथा कताई-बुनाई है। ''पात्र निर्माण का कार्य परम्परागत कुम्भकार वर्ग के अभ्यस्त हाथों द्वारा किया जाता है। जिसमें मिट्टी को कोमल तथा प्रभावशाली रूप प्रदान किया जाता है।''[7] धरती से विरासत में मिली मिट्टी से आदिवासी आवश्यकता के बर्तनों से लेकर अनाज, मकान और मकान के ऊपर छाने के लिये खपरैल तक प्राप्त कर लेता है। जीवन के व्यवहार में आने वाले पदार्थ को सौन्दर्य की दृष्टि से देखना उनकी जीवन शैली बन गयी है।''[8]

मिट्टी से आवश्यक बर्तनों को गढ़कर और हाट-बाजारों में बेच कर कुम्हार अपने परिवार का भरण-पोषण करता है। रायगढ़ के उड़िया सौन्दर्य प्रेमी कुम्हारों द्वारा निर्मित बर्तन, मटके तथा घरेलू उपकरण आकार में कोमल तथा लयात्मक होते हैं। ''इनके द्वारा बर्तनों के मुँह की कोर अत्यधिक सफाई से पलटी जाती है।'' मिट्टी की परत को छोटे से धड़ पर एकदम बाहर निकालकर थाली जैसा फैला देना उनके ही बस की बात है।''

नगरनार तथा कुम्हारपाड़ा कोंडा गाँव में काली, जगदलपुर में सफेद, नारायणपुर में पीली भूरी तथा ऐड़का में पीली मिट्टी से बर्तन तथा मूर्तियाँ बनायी जाती हैं। बरतन सूखने के पश्चात 'पांजन मिट्टी' के घोल को पोत कर सुखाया जाता है। आवे में उन्हें सुखाने के बाद चित्रकारी की जाती है। आनुष्ठानिक कार्यों हेतु प्रयुक्त किये जाने वाली गगरी एवं कलशों पर उकेरण, कला या चित्रकारी गेरू या खड़िया से करते हैं। घड़ों, हंडियाँ व ढक्कन पर गीली मिट्टी को कुरेद कर बनाये गये फूल, पत्ती, बेल तथा ज्यामितिय आकृतियाँ लोक कला की सुंदर अभिव्यक्ति हैं। इस क्षेत्र में कछुए की आकृति युक्त निर्मित मृदभांड विशेष आकर्षक होता है। छत्तीसगढ़ में अति प्राचीन काल से मूर्तियाँ निर्मित करने की परम्परा है। कुशल शिल्पकार विभिन्न प्रचलित गोत्र चिह्नों यथा नाग, कछुआ, केकड़ा, बिच्छू, बाघ आदि के साथ-साथ पराशक्तियों की पूजा हेतु हाथी, घोड़ा, नांदिया की आकृतियाँ भी बनाते हैं।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3592674

वर्तमान में छत्तीसगढ़ अंचल में यहाँ की सम्पन्न संस्कृति के अभिन्न अंग के रूप में मृण्यमूर्तियों की सुदीर्घ कलात्मक रूपाकार आदिम अवशेषों एवं कृषि व्यवस्था के रूप में आज भी निर्मित किये जा रहे हैं। प्राचीन कथा के अनुरूप कुम्हार ईश्वर के आशीर्वाद स्वरूप बैल की आकृति बनाता आ रहा है। उसका विश्वास है कि 'बैलों की पूजा करने से उसके परिवार का भरण-पोषण होगा।' इसके अतिरिक्त आदिवासी विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियाँ पकी हुयी मिट्टी 'टेराकोटा' में बनाता है। ये मूर्तियाँ तथा देवी-देवताओं के वाहन रूप में सिंह, हाथी, घोड़े, नन्दी आदि लोक मानव द्वारा इच्छा पूर्ण होने के बाद माता-गुड़ी (पूजास्थल) पर भेंट स्वरूप चढ़ाये जाते हैं। वर्तमान में कुम्हारों द्वारा विभिन्न प्रकार के आकर्षक गमलों में चारों दिशाओं में मुख किये हाथी, घोड़े, बैल के शीश आदि भी बनाये जा रहे हैं। पारम्परिक रूपाकारों लकड़हारा, बूढ़ा आदमी, पनिहारिन, गिलहरी, कुत्ता, सुअर, मेंढक, चिड़िया आदि के साथ-साथ आज कुम्हार आधुनिक उपकरणों कलात्मक, पेन स्टेण्ड, डेकोरेशन पीस आदि निर्मित करने में भी विशेष रूचि ले रहा हैं।

छत्तीसगढ़ के शिल्पकर्मी चाक पर बड़े और सुघड़ खपरैल तो बना ही रहे हैं। उनके साथ ही विभिन्न रूपाकारों में ऊपरी भाग में लगायी जाने वाली चिड़िया, कलश (साधारण या मन्दिरनुमा) आदि भी बनाते हैं। परिवर्तन स्वरूप आजकल बतख, बाघ, बैल, कुत्ता, सुअर, गिलहरी, बिच्छू, नाग, केकड़ा, मेंढक, मोर तथा देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी इस कार्य हेतु लोकप्रिय होती जा रही हैं। दीपावली पर कुम्हार द्वारा निर्मित कलात्मक गज-लक्ष्मी दीपक, लक्ष्मी दीपक, ग्वालिन दीपक, स्तंभ दीपक तथा रूखा दिया, जहाँ उनके आनुष्ठानिक कर्म का हिस्सा हैं वहीं चिड़िया दीया उनकी वैज्ञानिक सूझ-बूझ का परिचय देता है। विभिन्न प्रकार की गुल्लकें जिनमें उल्लू व जोकर आदि बने होते हैं, बनायी जाती है।

प्रत्येक क्षेत्र में प्रचलित खिलौनें वहाँ के क्षेत्रीय प्रभाव को उजागर करते हैं। यहाँ के कुम्हारों द्वारा भी उनकी ऊंगलियों के जादू से मिट्टी विभिन्न कलात्मक एवं मौलिक रूपों में आकार ग्रहण करती रही है। बच्चों के खेल संबंधी अनेक सामग्री थाली, चरू, बेलना, झारा, करछुल, फरैया, बाल्टी, सिगड़ी, चौकी, डोलची, ग्लास, साहब-जाटा, चूल्हा, चकियाँ आदि भोजन पकाने एवं परोसने संबंधी लगभग चालीस प्रकार के बर्तन मौलिक निर्मित आकारों में किये जाते हैं। लकड़बाबा का खिलौना प्रत्येक कुम्हार द्वारा बनाया जाता है। दूलपुतरी (डोली में बैठे दूल्हा-दुल्हिन), मनुष्याकृतियों में उरांव-उरांवी, माता-शिशु आदि बनाये जाते हैं।

कोरकू जनजाति के लोक व जनजातीय कलाकार अपने पारम्परिक अभिप्रायों के रक्षार्थ घोटुल खम्भ, देवगुड़ी देवी-झूला, काष्ठ मूर्तियों, तीर-धनुष आदि में अपने पारम्परिक विभिन्न अभिप्रायों को उदारता से उकेरते हैं। सरगुजा में पशु-पक्षी तथा मानवाकृतियाँ बड़े आकार की बनायी जाती हैं। जिनमें प्रयुक्त प्रतीक आनुष्ठानिक, सामाजिक, तंत्र एवं रहस्य से जुड़े होते हैं। आदिवासियों में विभिन्न अवसरों विवाह आदि पर मांगलिक काष्ठ स्तंभ, गुड़ी स्तम्भ, स्मृति स्तम्भ, सेमल स्तम्भ, घोटुल स्तम्भ तथा अलंकरण युक्त दरवाजे, झूले, कंघियाँ, मुखौटे आदि बनाने की भी सुन्दर परम्परा है।

बस्तर जिले के विभिन्न जाति के काष्ठ शिल्पी मांग के अनुरूप सजावटी शिल्पकृतियाँ अत्यधिक सौन्दर्यपूर्ण बनाते हैं-मुरिया युगल, माड़िन-माड़िया, नृत्यरत् मुरिया युवक-युवती, मुरिया वृद्ध-वृद्धा, सल्फी वृक्ष व युगल, तंग्याधारी माड़िया, यतौनधारी मुरिया युवक-युवती, शेर व युवक, काँवड़धारी युवक, ढोल वादक, माँदर वादक, टिमकी वादक, जंगल जाते युवक-युवती, हण्डी वाली युवती आदि। बस्तर के दंड़ामी-माड़िया तम्बाकू व चूना रखने के उद्देश्य से कलात्मक डिबिया बनाने में अपनी पूर्ण कारीगरी दिखाते हैं। विभिन्न आकार वाली इन डिबियों को अनेकानेक पशु-पक्षी, पुष्प-पत्रों तथा ज्यामितीय आकारों से सजाया जाता है। साथ ही

इनमें मानव शरीर के प्रजनन अंगों को भी आकर्षक रूपों में उकेरा जाता है। कुछ स्थानों पर इनमें चाँदी या रांगे से नक्काशी भी की जाती है।

यहाँ प्रचलित धातु शिल्प की सुदीर्घ परम्परा के फलस्वरूप विभिन्न सौन्दर्य परक, आनुष्ठानिक तथा उपयोगी कलाकृतियाँ धातु ढलाई में बनायी जाती हैं। यह कार्य सरगुजा का सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। धातु से सर्प मूर्ति, दंतेश्वरी देवी का छत्र, बस्तर की मातृ देवियाँ, ग्राम रक्षक, मातृ देवियाँ, माड़िया नर्तक, माँ-बच्चा, सल्फी वृक्ष, पशु-पक्षी, विभिन्न प्रकार के दीपक, आभूषण, चिमनियाँ, वस्तु नापने एवं संग्रह करने वाले पात्र, गाड़ी पहियों के पट्टों के अतिरिक्त लौह पट्टियों से अघुनातन, प्रदर्शनीय व उपयोगी शिल्पों का निर्माण किया जा रहा है।

लौह शिल्पियों का मुख्य क्षेत्र बस्तर है। ये लोग अधिकांशतः कृषि उपकरण, शिकार में प्रयुक्त किये जाने वाले बाण आदि, टंगिया, जादू-टोनों में प्रयुक्त कीलें, देवताओं पर चढ़ाये जाने वाले अस्त्र-शस्त्र एवं अनेकानेक सुन्दर दीये बनाते हैं। छत्तीसगढ़ के हस्तशिल्पियों को सौन्दर्यबोध और यहाँ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की पूर्ण जानकारी होती है। अतः यहाँ का व्यवसायिक समुदाय अत्यन्त सम्पन्न एवं कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ''हालांकि लोक एवं आदिवासी कलाओं के व्यवसायीकरण ने बस्तर के लोहारों को प्रभावित किया है और उनकी कला में अतिरिक्त सजावटीपन तथा व्यवसायिक सतहीपन का समावेश हुआ है।''

आज आधुनिक समाज पुनः पारम्परिक अनगढ़ रूपाकारों की ओर आकृष्ट हो रहा है। अतः पुनः आदिवासी संस्कृति से जुड़ी विशिष्ट कलाओं के अन्तर्गत परम्परागत रूपाकारों की माँग बढ़ती जा रही है। अतः विभिन्न प्रकार की मूर्तियों का निर्माण बड़े पैमाने पर व्यवसायिक स्तर से किया जाने लगा है। हाँ यह अवश्य है कि शिल्पकार स्मृति स्तम्भों तथा कंघियों व गोदनों के अभिप्रायों को पलंग के सिरहाने, पैताने, कुतुल (पीढ़ों) आदि पर निर्मित कर रहे हैं। जिससे उन्हें आजीविका तो मिल ही रही है। साथ ही निर्यात हो रहे विभिन्न उपकरण आधुनिकता का जामा पहने किसी न किसी रूप में संस्कृति को लुप्त होने से बचा तो रहे हैं।

सन्दर्भ

[1] काबरा, डॉ0 किशोर, भारतीय कला, लोक साहित्य में सांस्कृतिक मूल्य (लेख), पृ0 58
[2] वसन्त निरगुणे, मध्य प्रदेश की जनजातीय चित्रकला परम्परा (लेख), सम्पादक नवल शुक्ल, म0प्र0 आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल, 1998, पृ0 21-22
[3] प्रेस ट्रस्ट फीचर, क्रमांक 330-क, 23 सितम्बर, 1986
[4] उपाध्याय, डॉ0 चिन्तामणि, लोकायन, पृ0 150
[5] खरे, जगदीश, अंग रेखांकन गोदना, चौमासा, वर्ष 8, अंक 25, 1991, पृ0 46
[6] श्याम परमार, गुदना-नृतत्व एवं इतिहास के संदर्भ में, चौमासा, अंक 25, वर्ष 8, पृ0 27
[7] Robert S. Bussabarger, Betty Dashewrobi: The Every day Art in India, P-9
[8] तिवारी, डॉ0 शिवकुमार, मध्य प्रदेश की जनजातीय संस्कृति, म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1999, पृ0 278
[9] परम्परा, मध्य प्रदेश की जनजातीय और लोक शिल्प परम्परा, सम्पादक-नवल शुक्ल, 1998, पृ0 7
[10] मुश्ताक खान, बस्तर के लौहार और लौह शिल्प, चौमासा, वर्ष-7, अंक 23, पृ0 109, 1990